'मास्टर' मणिमालायाः ११ मणिः (ज्योतिषविभागे ४)

❀ श्रीः ❀

नरपतिजयचर्योक्त—

अहिबलचक्रम्

भाषाटीकासहितम्



टीकाकारः—

पं० श्रीसीतारामझा, ज्यौ० आ०-तीर्थः

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स

मूल्यम् ।)

"भास्कर" मणिमालाया एकादशो मणिः (ज्यौतिषविभागे चतुर्थः ४)

नरपतिजयचर्योक्त—

अहिबलचक्रम्

मुरभङ्गामण्डलान्तर्गत-चौगमा-निवासिकाशीस्थसंन्यासि-संस्कृत-महाविद्यालयप्रधानाध्यापक-ज्यौतिषाचार्यतीर्थ-

पं० श्रीसीतारामशर्मकृत—

सुबोधिनी—टीकासहितम् ।

तेनैव संशोधितम् ।

तदिदम्

काशीस्थ-'संस्कृत—बुकडिपो'ऽधिपतिभिः

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स महोदयैः

स्वीये 'मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स' नाम्नि यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

मूल्यम् ।)

सादरं समर्पणम्

'मास्टर'मणिमालाया एकादशसंख्यको मणिर्जातः ।
ज्यौतिषशास्त्रविभागे, चतुर्थ एवेति नतशिरसा ॥
श्रीविश्वेशपदेभ्यः सादरमादौ समर्प्यते भक्त्या ।
तद्गुणकीर्तन-दर्शन-जातसुखेन प्रकाशकेन मया ॥

भूमिका

अदृष्टं भूस्थितं द्रव्यं शल्यं तोयं च दैवतम् ।
ज्ञायते येन तच्छास्त्रं ज्योतिषं कैर्न वन्द्यते ॥

जिस शास्त्र के द्वारा भूमि के नीचे गड़े हुए द्रव्य, शल्य आदि का ज्ञान होता है ऐसा ज्योतिष शास्त्र किससे वन्दनीय नहीं है ? किन्तु कराल कलिकाल के प्रभाव से दिव्यदृष्टि प्राचीन महर्षियों के बनाए हुए ग्रन्थ लुप्तप्राय हो रहे हैं। जो कुछ उपलब्ध भी हैं उनके गूढ़ अभिप्रायों को हम लोग समझते हो नहीं। समझें कैसे ? ऐसे आलसी हो गये हैं कि उनकी खोज भी नहीं करते हैं, अगर थोड़ा भी श्रम उठावें तो अब भी नरपतिजयचर्या, लोमशसंहिता आदि अनेकों ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके द्वारा ग्रहण आदि दृश्य गणित के समान-अदृश्यफलगणना में भी सत्यता प्रत्यक्ष हो सकती है।

इस समय भूमिस्थित द्रव्य, शल्य आदि जानने के लिए नरपति-जयचर्योक्त "अहिबलचक्र" तथा अश्रुत और अदृष्ट वस्तु का पता लगाने में लोमशसंहितोक्त "धराचक्र" ये दोनों अत्यन्त प्रामाणिक हैं। इनमें भी अपने कुल के स्थापित द्रव्य का 'अहिबलचक्र' से और अदृष्ट अश्रुत द्रव्य का 'धराचक्र' से निश्चय करने का आदेश है। लोमश-संहिता में कहा है—

"चक्रेणाऽहिबलाख्येन स्वकुलैः स्थापितं धनम् ।
अदृष्टं चाश्रुतं वित्तं धराचक्रेण साधयेत् ॥"

—स्पष्टार्थ

इन दोनों में 'अहिबलचक्र' तो नरपतिजयचर्या में मुद्रित उपलब्ध है। नरपतिजयचर्या से पृथक् भी भाषाटीका सहित मुद्रित हो चुका है। किन्तु उसमें कितने ही स्थानों में त्रुटियों को देखकर सविशेष-सान्वय सोदाहरण तथा उपपत्ति (युक्ति) सहित, भाषाटीका करके बा० बैजनाथप्रसाद यादव (मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुकडिपो के अध्यक्ष) को प्रकाशित करने के लिये मैंने समर्पण किया। यदि इससे सुजन-समाज का कुछ भी उपकार होगा तो मेरा भी यत्न सफल होगा।

'धराचक्र' सम्भवतः आज तक मुद्रित नहीं हुआ था। बहुत अन्वेषण करने पर मुझे लेख-पुस्तक से उपलब्ध हुआ। उसे भी मैंने टीका सहित मुद्रित कराकर आप महानुभावों की सेवा में प्रस्तुत कर दिया है। आप महानुभावों से विशेष प्रार्थना यही है कि इसमें मनुष्यधर्मवश जो कुछ त्रुटि हुई हो उन्हें क्षमाकर मुझे अनुगृहीत करें।

❀ इति शम् ❀

भवदीयकृपाभिलाषी—

श्रीसीतारामझा, चौगमा।

(सम्प्रति काशी)

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

अहिबलचक्रम् ।

टीकाकारकृतमङ्गलाचरणम्—

यत्पादपङ्कजकृपालवमेव लब्ध्वा मूढोऽपि गूढविषयानिह वक्तुमीशः ।
नत्वा गिरं गणपतिं गगनेचरांस्तान् विज्ञाहतेऽहिबलके वितनोमि टीकाम् ॥

अथ वस्तुनिर्देशात्मकं मङ्गलाचरणम्—

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम् ।
द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः ॥ १ ॥

अन्वयः—साधकाः येन चक्रेण, (भूमौ) द्रव्यं सुवर्णादिकं, शल्यं=अस्थ्यादिकं, तथा शून्यं जानन्ति (तत्) यथा सर्वज्ञभाषितं अहिचक्रं (अहं) प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

अर्थ—साधकगण जिस चक्र से भूमि में गड़ा हुआ द्रव्य (सुवर्ण, रजत आदि) शल्य (हड्डी आदि) तथा शून्य (द्रव्य शल्य रहित स्थान) समझते हैं, उस सर्वज्ञ (महादेवजी आदि) का कहा हुआ अहिचक्र को मैं (नरपतिनामक ग्रन्थकार) कहता हूँ ॥ १ ॥

अथ परिभाषा—

वितस्तिद्वितयं हस्तो राजहस्तश्च तद्द्वयम् ।
दशहस्तैश्च दण्डः स्यात् त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनम् ॥ २ ॥

अन्वयः—वितस्तिद्वितयं हस्तः, तद्द्वयं = हस्तद्वयं राजहस्तः, दशहस्तैः दण्डः स्यात्, त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनं भवति ॥ २ ॥

अर्थ—दो बित्ते का एक हाथ, और दो हाथ का एक राजहस्त (गज) होता है और दश राजहस्त का एक 'दण्ड होता है। उस दण्ड से ३० दण्ड का एक निवर्तन होता है, अर्थात् ३० दण्ड लम्बा और चौड़ा जमीन एक 'निवर्तन' कहलाता है ॥ २ ॥

अथ चक्रस्थापनप्रकारः—

निधिर्निवर्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम्॥ ३॥

अन्वयः—यत्र भूतले निवर्तनैकस्थः निधिः (द्रव्यं) सम्भ्रान्तः, तत्र स्थानद्वारमुखस्थितं इदं = वक्ष्यमाणं चक्रं स्थाप्यम्॥ ३॥

अर्थ—जिस जमीन में एक निवर्तन के भीतर निधि (गाड़ा हुआ धन) सम्भ्रान्त (भूल) हो गया हो उस स्थान के द्वार पर अहिचक्र के मुख रख कर स्थापन करै॥ ३॥

अथ स्थानद्वारज्ञानम्—

गृहे चेत्तद्गृहद्वारे, बहिश्चेदहिमस्तके।
अथवेन्दुभदिश्येव यदि वा निधिपो यतः॥
प्रविशेत् तत्र विज्ञेयं स्थानद्वारं त्रिधा बुधैः।
भाद्रात् त्रिभिस्त्रिभिर्मासैः क्रमात् प्राच्या अहेः शिरः॥
अहिचक्रमिदं तत्र स्थाप्यं विद्वद्वरैर्यथा।
द्वारे नागशिरस्तत्र कृत्तिकादीनि विन्यसेत्॥

अर्थ—यदि किसी घर में भूला हुआ द्रव्य हो तो उस घर के द्वार को ही स्थान का द्वार समझना। यदि बाहर में हो तो जिस दिशा में शेषनाग का शिर हो उसी दिशा में स्थान का द्वार समझना। अथवा कृत्तिकादि सात सात नक्षत्र पूर्वादि दिशाओं में है उस हिसाब से जिस दिशा में चन्द्र नक्षत्र हो उस दिशा में स्थान का द्वार समझना। अथवा द्रव्य का मालिक जिस दिशा से उस स्थान में प्रवेश करै उसी दिशा में स्थान के द्वार समझना। इस प्रकार बाहर में द्रव्य ज्ञान करने में तीन प्रकार से स्थानद्वार कहा गया है। भाद्र आदि तीन तीन मासों में पूर्वादि दिशाओं में क्रम से शेषनाग का शिर रहता है, अर्थात् भाद्र से तीन मासों में पूर्व में, अगहन से ३ मासों में दक्षिण, फाल्गुन से ३ मासों में पश्चिम, और ज्येष्ठ से ३ मासों में उत्तर दिशा में। इस प्रकार घर से बाहर में स्थान द्वार का निश्चय कर अहिचक्र को इस प्रकार स्थापन करै जिससे नाग का मस्तक स्थान द्वार पर पड़े वहाँ से कृत्तिकादिक नक्षत्र का न्यास करना चाहिए।

तत्र निर्णयः—

प्रकारत्रितयादेव निधिं संसाधयेद् बुधः ।
संवादे द्रव्यलाभः स्याद् विसंवादे न किञ्चन ॥

अर्थः—उपरोक्त तीनों प्रकार से निधि का ज्ञान करै, यदि तीनों प्रकार से वा दो प्रकार से एक वाक्यता हो तो निश्चय द्रव्य लाभ होता है। तीनों में एक वाक्यता न हो तो द्रव्यलाभ नहीं होता है वहाँ १२ श्लोक से चक्र स्थापन करना।

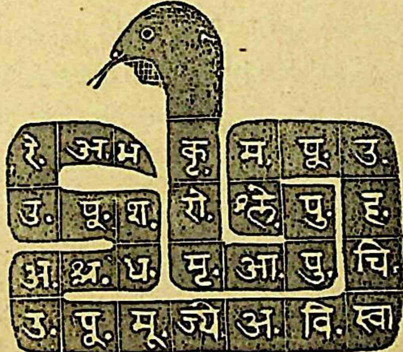
अथ चक्रनिर्माणप्रकारः—

ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यं तिर्यक् पञ्च तथैव च ।
अहिचक्रं भवत्येवमष्टाविंशतिकोष्ठकम् ॥४॥

अन्वयः—ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यम्, तथैव च पञ्चतिर्यक्रेखाः लेख्याः, एवं अष्टाविंशतिकोष्ठकं अहिचक्रं भवति ॥ ४ ॥

अर्थः—आठ खड़ी रेखा और पाँच पड़ी रेखा लिखने से (२८) अट्ठाइस कोष्ठ का अहिचक्र होता है ॥ ४ ॥

यथा—



अथ चक्रे नक्षत्रस्थापनप्रकारः—

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिकापितृभाग्यकम् ।
उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपंक्त्यां भसप्तकम् ॥५॥

अन्वयः—तत्र (चक्रे) पूर्वपङ्क्त्यां पौष्णाश्वियाम्यर्क्षे, कृत्तिकापितृभाग्यकम्, उत्तराफाल्गुनी इति भसप्तकं लेख्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ—उपरोक्त चक्र में ऊपर के पहिली पंक्ति के सात कोष्ठों में क्रम से रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तर-फाल्गुनी लिखे ॥ ५ ॥

अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम् ।
पुष्यं, हस्तं, समालेख्यं* द्वितीयां पङ्क्तिमास्थितम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—(पुनः) अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं, शतभं ब्राह्मसार्पभं, पुष्यं, हस्तं, द्वितीयां पङ्क्ति आस्थितं समालेख्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ—फिर दूसरी पङ्क्ति के सातों कोष्ठ में क्रम से उत्तरभाद्रपदा, पूर्वभाद्रपदा, शतभिषा, रोहिणी, श्लेषा, पुष्य और हस्त लिखे ॥ ६ ॥

विधिर्विष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं रौद्रं पुनर्वसुः ।
चित्राख्यं च तृतीयायां पङ्क्तौ धिष्ण्यस्य†सप्तकम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—(पुनः) तृतीयायां पङ्क्तौ विधिः, विष्णुः, धनिष्ठाख्यं सौम्यं, रौद्रं, पुनर्वसुः, चित्राख्यं, 'इति' धिष्ण्यस्य सप्तकं लेख्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ—फिर तीसरी पङ्क्ति के सातों कोष्ठक में क्रम से अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, चित्रा ये नक्षत्र लिखे ॥ ७ ॥

विश्वर्क्षं तोयभं मूलं ज्येष्ठां मैत्र-विशाखके ।
स्वातिं पङ्क्तौ चतुर्थ्यां च कृत्वा चक्रं विलोकयेत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—(पुनः) चतुर्थ्यां पंक्तौ विश्वर्क्षं, तोयभं, मूलं ज्येष्ठां, मैत्रविशाखके, स्वातिं च कृत्वा चक्रं विलोकयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—फिर चौथी पंक्ति के सातों कोष्ठक में क्रम से उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, विशाखा, स्वाती लिखकर चक्र को देखे ॥ ८ ॥

* 'लिखेत् प्राज्ञो' इति पाठः साधुः । † "नक्षत्रसप्तकम्" इति पाठः ।

एवं प्रजायते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः ।
द्वारशाखे मघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता ॥ ९ ॥

अन्वयः—एवं चक्रे पन्नगाकृतिः प्रस्तारः प्रजायते । तत्र द्वारशाखे मघा-याम्ये 'तथा' द्वारस्था कृत्तिका मता ॥ ९ ॥

अर्थ—इस प्रकार चक्र में सर्पाकृति प्रस्तार होता है । उसमें द्वार की दोनों शाखाओं में मघा और भरणी, और द्वार में कृत्तिका होती है । पीछे चक्र देखो ॥ ९ ॥

अथ चन्द्रसूर्ययोर्नक्षत्राणि—

अश्वीशपूर्वाषाढ़ादि–त्रिकं पञ्च–चतुष्टयम् ।
रेवती पूर्वभाद्रेन्दोर्भानि *शेषाणि भास्वतः ॥१०॥

अन्वयः—अश्वीशपूर्वाषाढ़ादित्रिकं पञ्च चतुष्टयम्, रेवती, पूर्वभाद्रा 'इति' इन्दोः भानि, शेषाणि भास्वतः = सूर्यस्य भानि भवन्ति ॥१०॥

अर्थ—अश्विनी से तीन (अ. भ. कृ.) आर्द्रा से पांच (आ. पु. पु. श्ले. म.) और पूर्वाषाढ़ से चार (पू. षा, उ. षा, अभि., श्रवण) तथा रेवती और पूर्वभाद्रपदा ये १४ चन्द्रमा के नक्षत्र हैं और शेष १४ (रो. मृ. पू. फा. उ. फा, ह. चि. स्वा. वि. अनु. ज्ये, मूल, ध. श. उत्तरभाद्रपदा) नक्षत्र सूर्य के हैं ॥ १० ॥

अथ तात्कालिकचन्द्रसाधनम्—

उदयादिगता नाड्यो भग्नाः षष्ट्याप्तशेषके ।
दिनेन्दुभुक्तयुक्ते स भवेत् तत्कालचन्द्रमाः ॥ ११ ॥

अन्वयः—(प्रश्नकालिकनक्षत्रस्य) उदयादिगताः नाड्यः भग्नाः=सप्तविंशति-गुणिताः (ततः) षष्ट्याप्तशेषके दिनेन्दुभुक्तयुक्ते कार्ये, स तत्कालचन्द्रमाः भवेत् ॥

अर्थ—प्रश्नकाल में वर्तमान नक्षत्र के उदय (अर्थात् आरम्भ काल) से जितनी घटी गत हो गई हो अर्थात् इष्ट काल में जितनी

* पूर्वभाद्रपदा पौष्णमिन्दोः शेषाणि भास्वतः । इति पाठः साधुः ।

भयात घटी हो, उसको २७ से गुना करके ६० साठ अर्थात् भभोग घटी से भाग देना लब्धि और शेष जो हो उसमें अश्विनी आदि गत चन्द्र नक्षत्र की संख्या जोड़ने से तात्कालिक चन्द्रमा होते हैं अर्थात् स्पष्ट-चन्द्रनक्षत्र होता है ॥ ११ ॥

उदाहरणम्—

आदौ भयातभभोगपरिभाषा मदीया—

नक्षत्रारम्भतः स्वेष्ट-कालं यावद् गतं भवेत् ।
घट्यादिकं भयातं तद्, अस्य भोगो भभोगकः ॥

अर्थ— वर्तमान नक्षत्र के आरम्भ समय से इष्ट काल पर्यन्त जितनी घटी और पल गत हुआ हो वह 'भयात' कहलाता है । और वर्तमान नक्षत्र का सम्पूर्ण (आरम्भ से अन्त तक) भोग काल घट्यादिक भभोग कहलाता है ।

अथ भयातभभोगसाधनप्रकारो मदीयः—

षष्ट्या गतर्क्षघट्याद्यं शोध्यं स्वेष्टघटीयुतम् ।
भयातं स्यात् तथा स्वर्क्षघटीयुक्तं भभोगकः ॥

अर्थ—पञ्चाङ्ग में गत नक्षत्र की घटी और पल जो लिखा हो उसे ६० में घटा कर शेष में इष्ट घटी पल जोड़ देने से भयात होता है। और उसी शेष में वर्तमान नक्षत्र की पञ्चाङ्गस्थ घटी और पल को जोड़ देने से भभोग होता है ।

विशेष—

पञ्चाङ्गर्क्षघटीमानादिष्टकालोऽधिकस्तदा ।
तदन्तरं भयातं स्याद् भभोगः पूर्ववत् सदा ॥

अर्थ—पञ्चाङ्ग में नक्षत्र का मान जो घटी, पल लिखा रहता है उससे इष्टकाल अधिक हो (अर्थात् अग्रिम नक्षत्र में इष्टकाल हो) तो उन दोनों का अन्तर (अर्थात् इष्टकाल में नक्षत्र मान घटी, पल को घटा कर शेष) भयात होता है। भभोग पूर्ववत् साधन करे। अथवा अपनी बुद्धि से पूर्व श्लोक के अनुसार भयात भभोग साधन कर लेना चाहिये ।

यथा—

संवत् १९८५ चैत्र शुक्ल ५ पञ्चमी सोमवार में सूर्योदय से पन्द्रह दण्ड बीस पल (१५ । २०) इष्टकाल में प्रश्न किया तो

पञ्चाङ्ग के तिथि नक्षत्र—

तिथि	वार	घ. प.	नक्षत्र	घ. प.
४	रवि	२८।५७	भ.	१५।२६
५	चं.	२२।५७	कृ.	११।२५
६	मं.	१७।२२	रो.	६।३५

यहाँ ५ सोमवार में कृतिका नक्षत्र के मान (११।२५) से इष्टकाल (१५।२०) अधिक है इसलिये इष्टकाल में नक्षत्रमान को घटाया तो शेष ३।५५ रोहिणी के आरम्भ से इष्टकाल तक गत घटी हुई यही ३।५५ भयात हुआ।

तथा इष्टकाल में रोहिणी वर्तमान होने के कारण गतर्क्ष कृत्तिका हुई, उसका मान पञ्चाङ्ग में ११।२५ है इसको ६० में घटाया तो शेष ४८।३५ रहा, इसमें रोहिणी का पञ्चाङ्गस्थ घटी ६।३५ जोड़ दिया तो ५५।१० भभोग हुआ।

अथ चन्द्रसाधनोदाहरणम्—

"उदयादिगता नाड्यः" इत्यादि श्लोक के अनुसार भयात ३।५५ को एक जातीय करके २३५ हुआ, इसको २७ से गुना किया तो ६३४५ हुआ, इसमें भभोग (५५।१०) के एकजाती ३३१० से भाग दिया प्रथमलब्धि १। शेष ३०३५ को ६० गुना कर १८२१०० इसमें भभोग ३३१० से भाग दिया तो दूसरी लब्धि ५५ फिर शेष ५० को ६० से गुना कर ३००० इसमें उसी ३३१० से भाग दिया तो तीसरी लब्धि ० वर्तमान नक्षत्र के पल हुए।

भागक्रियादर्शनम् ।

भाजक) भाज्य (लब्धि
३३१०) ६३४५ (१=नक्षत्र
३३१०

नक्षत्रशेष=३०३५
×६०

३३१०) १८२१०० (५५=घटी
१६५५०

१६६००
१६५५०

घटी शेष= ५०
×६०

३३१०) ३००० (०=पल

इस प्रकार नक्षत्रादि लब्धि=१।५५।० में अश्विनी से इष्टकाल में गत नक्षत्र कृत्तिका तक की संख्या ३ जोड़ दिया तो ४।५५।० यह स्पष्ट चन्द्र का नक्षत्र हुआ, अर्थात् ४ रोहिणी गत, वर्तमान मृगशिरा के दण्ड पल (५५।०) पर चन्द्रमा हैं। इसी प्रकार सर्वत्र भयात भभोग पर से चन्द्रमा का नक्षत्र समझना। इस प्रकार यहाँ १० वाँ श्लोक के अनुसार सूर्य के नक्षत्र में चन्द्रमा हुआ।

इसकी उपपत्ति (युक्ति)—

यह है—कि जितने काल में चन्द्रमा एक नक्षत्र का भोग करते हैं, उतने ही कालमें उसी नक्षत्रसे आरम्भ कर २७ सत्ताइस नक्षत्रोंका भोग (अन्तर) बीतता है इस लिये त्रैराशिक से अनुपात हुआ कि—यदि भभोग घटी में २७ नक्षत्र तो भयात घटी में क्या = $\frac{२७ \times भयात}{भभोग}$ लब्धि-गत नक्षत्र, शेष वर्तमान नक्षत्र की घटी और पल होता है, अश्विन्यादि

से नक्षत्र की संख्या जानने के लिए गत चन्द्रनक्षत्र जोड़ा जाता है। यहाँ आचार्य ने भभोग के स्थान में स्वल्पान्तर से ६० ग्रहण किया ॥११॥

अथ स्थानद्वारज्ञानम्—

षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः ।
त्रिभिर्भक्त्वा युगैः शेषं प्रागादि-चक्रवक्त्रगम् ॥१२॥

अन्वयः—तं निशानाथं = चन्द्रं, षष्टिघ्नं, शरवेदाप्तकम्, पुनः त्रिभिः भक्त्वा, युगैः शेषं प्रागादि-चक्रवक्त्रगं (ज्ञेयम्) ॥१२॥

अर्थ—"उदयादिगता नाड्यः" इत्यादि प्रकार से साधित स्पष्ट नक्षत्रात्मक चन्द्र को ६० से गुना करके उसमें ४५ से भाग देकर फिर तीन का भाग देने से सशेष लब्धि को चार से तष्टित करने से शेष पूर्वादि–दिशास्थित–चक्र के मुख (द्वार) समझना चाहिये। अर्थात् १ में पूर्व, २ में दक्षिण, ३ में पश्चिम, ४ में उत्तर स्थान के द्वार होता है* ॥१२॥

इसकी उपपत्ति युक्ति—

$$\text{पूर्वोक्तनक्षत्रात्मक चन्द्रमा} = \text{गन} + \frac{२७ \times \text{भया}}{६०}$$

$$= \frac{६० \text{ गन} + २७ \times \text{भया}}{६०} \text{ अनुपात से}$$

$$\text{राश्यात्मक चन्द्रमा} = \frac{(६० \text{ गन} + २७ \text{ भया}) १२}{६० \times २७}$$

$$= \frac{६० \text{ गन} + २७ \text{ भया}}{४५ \times ३} = \frac{६० \times \text{पूर्वोक्तचन्द्र}}{१३५}$$

---

* षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरविश्वाप्तशेषकम् ।
युगैर्भक्त्वा भवेच्छेषं प्रागादि-चक्रवक्त्रगम् ॥ इति पाठान्तरम् ॥

अन्वयः—तं निशानाथं षष्टिघ्नं शरविश्वाप्तशेषकम्,
युगैः = ४ चतुर्भिः भक्त्वा शेषं प्रागादिचक्रवक्त्रगं भवेत् ।

अर्थ—उपरोक्त चन्द्र को ६० से गुनाकर, १३५ का भाग देने से शेष सहित जो लब्धि हो उसको ४ से तष्टित करने पर एकादि शेष से पूर्वादि–दिशाओं में चक्र मुख (स्थान का द्वार) होता है।

मेषादिक राशियों में क्रम से पूर्वादिदिशाओं में चन्द्रमा रहते हैं इस लिये ४ से शेषित कर एकादिशेषों में पूर्वादिदिशा में चन्द्रमा रहते हैं, जिधर चन्द्रमा रहते हैं उधर स्थान का द्वार होना चाहिये। और उधर ही चक्र का मुख स्थापन करै। यह मुख्य पक्ष है।

उदाहरणम्—

पूर्वोक्त चन्द्रमा ४।५५।० इसको ६० से गुना किया तो २९५।० हुआ इसमें ४५ और ३ (अर्थात् ४५ × ३ = १३५) का भाग देना है इस लिये भाज्य २९५।० को ६० से गुनाकर एक जातीय किया तो १७७०० हुआ, इसे ६० से गुना करने के कारण भाजक १३५ को भी ६० से गुनाकर ८१०० हुआ इसका भाग दिया। भागक्रियादर्शन—[आगे देखो]

भाजक) भाज्य (लब्धि
८१००) १७७०० (२ रा
१६२००
राशि शेष = १५००
× ३०
८१००) ४५००० (५ अंश
४०५००
अंश शेष = ४५००
× ६०
८१००) २७०००० (३३ क
२४३००
२७०००
२४३००
कलाशेष = २७००
× ६०
८१००) १६२००० (२० वि०
१६२०००
शेष = ० ॥

इस प्रकार राश्यादि चन्द्रमा २।५।३३।२० यह चार ४ से अल्प है। इसलिये चार से तष्टित करने की आवश्यकता नहीं हुई, जहाँ राशि के स्थान में चार से अधिक हो वहाँ ४ से तष्टित कर पूर्वादि दिशा समझना। इस प्रकार यहाँ शेष तीसरी राशि में चन्द्रमा है इसलिये चक्र का मुख पश्चिम द्वार में हुआ ॥१२॥

बहुत पुस्तकों में—

"षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः ।
युगैः शेषं भवेद्यत्तत् प्रागादिचक्रवक्त्रगम् ॥

इस प्रकार प्रामादिक पाठ है, जिससे कुछ भी अर्थ नहीं निकलता है ॥

अथ स्पष्टसूर्यसाधनम्—

चन्द्रवत् साधयेत् सूर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम् ।
पश्चाद्विलोकयेत् तौ च स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ ॥१३॥

अन्वयः—चन्द्रवत् इष्टकालिकं ऋक्षस्थं सूर्यञ्च साधयेत् । पश्चात् तौ = चन्द्र-सूर्यौ स्वर्क्षे स्वस्वभे स्थितौ, वा अन्यभे स्थितौ, इति विलोकयेत् ॥ १३ ॥

अर्थः—जिस प्रकार चन्द्रनक्षत्र के भयात और भभोग पर से स्पष्ट चन्द्रमा का साधन ऊपर हुआ है उसी प्रकार इष्टकाल में नक्षत्रस्थित स्पष्टसूर्य का साधन करे, (अर्थात् जिस नक्षत्र में सूर्य हो उस नक्षत्र में सूर्य के प्रवेशकाल से इष्टकाल तक गत दिनादिक को सूर्य सम्बन्धी भयात मानना, और वर्तमान नक्षत्र के प्रवेश समय से अग्रिम नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश समय तक सूर्य सम्बन्धी भभोगकाल होता है। इस प्रकार सूर्य का भयात और भभोगकाल बनाकर सूर्यभयात काल को २७ से गुना करके उनमें सूर्यभभोग काल का भाग देना, लब्धि पूर्व प्रकार दिनादिक तीन स्थान लेना उसमें सूर्यभुक्त नक्षत्र की संख्या अश्विनी से गिन कर जोड़ने से स्पष्ट सूर्य का नक्षत्र होता है, वही तात्कालिक सूर्य कहलाता है) पश्चात् सूर्य और चन्द्रमा को देखना कि अपने २ नक्षत्र में हैं या भिन्न भिन्न २ नक्षत्र में है ॥१३॥

सूर्यसाधनोदाहरणम्—

उपरोक्त प्रश्न समय (इष्टकाल) में सूर्य उत्तराभाद्रपदा में हैं। चैत्र कृष्ण ९ शुक्रवार में ५२।३५ घड़ी पल पर उ. भा. में सूर्य का प्रवेश

हुआ उस समय से चैत्र शुक्ल ५ सोम (१५।२०) इष्टकाल तक दिनादिक ९।२२।४५ (अर्थात् ९ दिन, २२ घड़ी ४५ पल) यह सूर्यसम्बन्धी भयात काल हुआ। तथा चैत्र शुक्ल ९ शुक्रवार में १९।५० घटी पल पर अग्रिम (रेवती) नक्षत्र में सूर्य का प्रवेश है, इस लिये उ. भा. में सूर्य के प्रवेश समय से रेवती में प्रवेश समय तक अन्तर दिन घड़ी पल (१३।२७।१५) यह सूर्य का भभोगकाल हुआ। अब चन्द्रमा के साधनवत् सूर्य के भयात दिनादि (९।२२।४५) को एक जातीय करके ३३७६५ हुआ इसको २७ से गुना किया तो ९११६५५ हुआ, इसमें सूर्य के भभोगदिनादि (१३।२७।१५) के एक जातीय ४८४३५ से भाग दिया लब्धि में तीन स्थान (नक्षत्र, घड़ी पलात्मक) पूर्ववत् ग्रहण किया तो १८।४९।२० हुआ। भागक्रिया प्रदर्शन—

हर भाज्य लब्धि

४८४३५) ९११६५५ (१८ = नक्षत्र
४८४३५
४२७३०५
३८७४८०
३९८२५ = नक्षत्र शेष
× ६०

४८४३५) २३८९५०० (४९ = घटी
१९३७४०
४५२१००
४३५९१५
१६१८५ = घटी शेष
× ६०

४८४३५) ९७११०० (२० = पल
९६८७००
२४०० = शेष का त्याग

इस प्रकार नक्षत्रादि लब्धि १८।४९।२० में इष्टकालिक सूर्य के भुक्त पूर्वाभाद्र तक की संख्या २५ अश्विनी से गिनकर जोड़ दिया तो ४३।४९।२० हुआ। यह नक्षत्र संख्या (२७) से अधिक है इस लिये २७ से तष्टित करने से शेष १६।४९।२० स्पष्ट सूर्य नक्षत्र हुआ, अर्थात् १६ वां विशाखा गत हुआ, वर्तमान अनुराधा के ४९ घड़ी, २० पल पर स्पष्ट सूर्य हुआ। उपपत्ति पूर्ववत् स्पष्ट है।

'अश्वीश' इत्यादि १० वाँ श्लोक के अनुसार सूर्य अपने नक्षत्र में हुआ। यहाँ सूर्य और चन्द्रमा दोनों सूर्य के नक्षत्र में पड़े इसलिये "चन्द्रर्क्षे यदाऽर्केन्दू" इत्यादि १४ वाँ श्लोक के अनुसार शल्य की सम्भावना हुई ॥१३॥

२७ नक्षत्र के बीच में अभिजित् का मान—

विश्वेदेवान्त्यतुर्यांशः श्रुतिपञ्चदशांशकः ।
आदिमश्चाभिजिन्मानं ज्ञेयं दैवविदा सदा ॥

अर्थ—उत्तराषाढ़ के अन्तिम चरण और श्रवण के आदिम १५ वाँ भाग अभिजित नक्षत्र का मान है। गणना करने में नक्षत्र की संख्या २७ ही लेना चाहिये।

अथ द्रव्यादिज्ञानम्—

चन्द्रर्क्षे यदार्केन्दू तदाऽस्ति निश्चितं निधिः ।
भानुर्ऋक्षे स्थितौ तौ चेत्तदा शल्यं न चाऽन्यथा ॥१४॥

अन्वयः—यदा अर्केन्दू चन्द्रर्क्षे 'स्याताम्' तदा निश्चितं निधिः 'अस्ति' तौ (अर्केन्दू) चेत्=यदि भानुर्ऋक्षे स्थितौ तदा शल्यं (अस्तीति ज्ञेयम्)। अन्यथा न=न किञ्चिदित्यर्थः ॥१४॥

उपरोक्त विधि से साधित सूर्य और चन्द्रमा दोनों चन्द्रमा के नक्षत्र में हों तो निश्चय निधि (द्रव्य) है, और यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों सूर्य के नक्षत्र में हों तो शल्य है ऐसा समझना। अन्यथा कुछ भी नहीं कहना।

स्वस्वभे द्वितयं ज्ञेयं नास्ति किञ्चिद्विपर्यये ।
स्थितं न लभते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते ॥१५॥

अन्वयः—तौ यदि स्वस्वभे स्थितौ तदा द्वितयं (निधिः शल्यं च) ज्ञेयम्। विपर्यये (सूर्यभे चन्द्रः, चन्द्रभे सूर्यस्तदा) किञ्चिन्नास्ति। चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते स्थितं अपि द्रव्यं न लभते ॥१५॥

अर्थ—यदि सूर्य और चन्द्रमा अपने अपने नक्षत्र में हों तो निधि और शल्य दोनों कहना। यदि विपर्यय (सूर्य के नक्षत्र में चन्द्र, चन्द्र के नक्षत्र में सूर्य हों) तो कुछ भी नहीं कहना। यदि चन्द्रमा पापग्रह से युक्त हो तो स्थित द्रव्य का भी लाभ नहीं होता है ॥१५॥

विशेष—

यत्र कोष्ठे स्थितश्चन्द्रस्तत्र कोष्ठे निधिं वदेत्।
यत्र कोष्ठे स्थितः सूर्यस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—तात्कालिक साधित चन्द्रमा जिस कोष्ठ में हो जमीन में उसी कोष्ठ में निधि (द्रव्य) कहना। और जिस कोष्ठ में सूर्य हों उस कोष्ठ में शल्य कहना ॥

शुभक्षेत्रे गते चन्द्रे द्रव्यलाभो न संशयः।
पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातव्यं दैवविद्वरैः ॥१६॥

अन्वयः—चन्द्रे शुभक्षेत्रे गते सति द्रव्यलाभः स्यात्, अत्र संशयः न। चन्द्रे पापक्षेत्रे गते सति न लाभः स्यात्, इति दैवविद्वरैः ज्ञातव्यम् ॥१६॥

अर्थ—चन्द्रमा शुभग्रह की राशि में हो तो निश्चय द्रव्य लाभ हो इसमें संशय नहीं है। यदि पाप ग्रह की राशि में चन्द्रमा हो तो द्रव्य लाभ नहीं होता है ॥१६॥

विशेष—

राशिस्वामिनः—

सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कर्कस्याधिपतिः शशी।
मेषवृश्चिकयोर्भौमो बुधो मिथुनकन्ययोः ॥
धनुर्मीनपतिर्जीवः शुक्रो वृषतुलापतिः।
एवं चाधिपतिः प्रोक्तः शनिर्मकरकुम्भयोः ॥

अर्थ—सूर्य सिंह के, चन्द्रमा कर्क के, मंगल मेष और वृश्चिक के, बुध मिथुन और कन्या के, बृहस्पति धनु और मीन के, शुक्र वृष और तुला के, शनि मकर और कुम्भ के स्वामी हैं।

पाप और शुभग्रह—

क्षीणचन्द्रार्कभौमार्क्याः पापास्तत्संयुतो बुधः ।
पापोऽन्यथा शुभो ज्ञेयस्तथा चान्ये शुभग्रहाः ॥

अर्थ—क्षीणचन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि ये पापग्रह हैं। यदि इनसे युक्त बुध हो तो वह भी पापग्रह कहलाता है, अन्यथा शुभग्रह कहलाता है, अन्य (पूर्ण चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र) ये शुभग्रह हैं ॥

पुष्टे चन्द्रे भवेन्मुद्रा क्षीणे चन्द्रेऽल्पको निधिः ।
ग्रहदृष्टिवशात् सोऽपि विज्ञेयो नवधा बुधैः ॥१७॥

अन्वयः—पुष्टे चन्द्रे मुद्रा भवेत्, क्षीणे चन्द्रे सति, अल्पकः निधिः भवेत् सोऽपि ग्रहदृष्टिवशात् बुधैः =पण्डितैः नवधा विज्ञेयः ॥१७॥

अर्थ—चन्द्रमा पुष्टबल हो तो मुद्रा (राजमुद्रा = रुपया) आदि, यदि चन्द्रमा क्षीणबल हो तो थोड़ा द्रव्य कहना। उसमें भी नवों ग्रह की दृष्टि वश से नव प्रकार के द्रव्य होते हैं ॥१७॥

ग्रहदृष्टिचक्रम्—

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	
३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०	३।१०		१ चरण
९।५	५।९	५।९	५।९		५।९	५।९	२ चरण
४।८	४।८		४।८	४।८	४।८	४।८	३ चरण
७	७	४।८ ७	७	७ ९।५	७	७ ३।१०	४ चरण

अपने स्थान से उक्त स्थानों में दृष्टि होती है।

हेम तारं च ताम्रारं रत्नं कांस्यायसं त्रपु ।
नागं चन्द्रे विजानीयाद् भास्करादिग्रहेक्षिते ॥१८॥

अन्वयः—भास्करादिग्रहेक्षिते चन्द्रे सति क्रमेण हेम, तारं, ताम्रारं, रत्नं, कांस्यायसं, त्रपु, नागं च विजानीयात् ॥१८॥

अर्थ—यदि चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो सुवर्ण, दैनिक चन्द्र की दृष्टि से मोती, मंगल की दृष्टि हो तो ताँबा, बुध की दृष्टि हो तो पीतल, बृहस्पति की दृष्टि हो तो रत्न, शुक्र की दृष्टि हो तो कांसा, शनि की दृष्टि हो तो लोहा, राहु की दृष्टि हो तो राँगा, और केतु की दृष्टि हो तो शीशा कहना ॥१८॥

मिश्रैर्मिश्रं भवेद्द्रव्यं शून्यं दृष्टिविवर्जिते ।
सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोऽसौ महानिधिः ॥१९॥

अन्वयः—मिश्रग्रहैः दृष्टे मिश्रं द्रव्यं ज्ञेयम्, दृष्टिविवर्जिते = ग्रहदृष्टिविवर्जिते चन्द्रे शून्यं ज्ञेयम् । सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे, असौ महानिधिः निर्दिष्टः ॥ १९ ॥

अर्थ—मिश्र (अर्थात् एक से अधिक) ग्रह की दृष्टि हो तो उन ग्रहों के जो द्रव्य कहे हैं वे सब समझना, यदि किसी ग्रह की दृष्टि चन्द्रमा पर न हो और चन्द्र क्षीणबली हो तो शून्य (कुछ भी नहीं) समझना. यदि सब ग्रह की दृष्टि हो तो महानिधि (बहुत द्रव्य) समझना ॥ १९ ॥

हेम रूप्यं च ताम्रारं पाषाणं मृण्मयायसम् ।
सूर्यादिगृहगे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं प्रजायते ॥ २० ॥

अन्वयः—चन्द्रे सूर्यादिगृहगे सति क्रमेण, हेम, रूप्यं, च पुनः ताम्रारं (ताम्रं, आरं) पाषाणं, मृण्मयायसम् (मृण्मयं, आयसम्) एवं सप्तविधं द्रव्यभाण्डं = द्रव्यभाजनं प्रजायते ॥ २० ॥

अर्थः—चन्द्रमा सूर्य की राशि में हो तो सोने के वर्तन में द्रव्य है, रूपनी राशि में हो तो रूपे के पात्र में, मंगल की राशि में हो तो ताँबे के पात्र में, बुध की राशि में हो तो पीतल के पात्र में, बृहस्पति की राशि में हो तो पत्थर के पात्र में, शुक्र की राशि में हो तो मिट्टी के पात्र में, शनि की राशि में हो तो लोहे के पात्र में द्रव्य समझना ॥ २० ॥

द्रव्य कितने हाथ नीचे जमीन में है ?—

भुक्तराश्यंशमानेन भूमानं कामिकैः करैः ।
नीचे द्विघ्नं परे नीचे जलस्थोऽसौ भवेन्निधिः ॥ २१ ॥

अन्वयः—भुक्तराश्यंशमानेन कामिकैः करैः भूमानं (कल्पयेत् इति शेषः) चन्द्रे नीचे सति द्विघ्नं = द्विगुणितं ज्ञेयम्, परे नीचे = परमे नीचे चन्द्रे असौ निधिः जलस्थः भवेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—चन्द्र राशि के जितने अंश गत हो गये हों उस हिसाब से कामिक (द्रव्य के मालिक) के हाथ से भूमान कल्पना करै, अर्थात् चन्द्रमा के जितने अंश भुक्त हो गये हों उतने हाथ नीचे, अथवा जितने नवांशगत हो उतने हाथ नीचे, जमीन में द्रव्य रहता है । यदि चन्द्रमा नीच राशि (वृश्चिक) के हों तो जितने अंश, या नवांश भुक्त हो उससे द्विगुणित हस्त नीचे द्रव्य रहता है । यदि चन्द्रमा परम नीच (वृश्चिक के ३ तीसरा अंश) में हो तो जमीनके नीचे जलमें द्रव्य रहता है ॥२१॥

ग्रहों के उच्चनीच समझने का चक्र—

ग्र.	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृह.	शुक्र.	शनि
उच्च	मे.	वृ	मकर	कन्या.	कर्क	मीन	तुला.
रा. अं.	० १०	१ ३	९ २८	५ १५	३ ५	११ २७	६ २०
नीच	तु.	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
रा. अं.	६ १०	७ ३	३ २८	११ १९	९ ५	५ २७	० २०

स्वोच्चस्थे तूर्ध्वगं द्रव्यं नवमांशक्रमेण च ।
परमोच्चे स्थिते चन्द्रे भित्तिस्थमृक्षसङ्क्रमे ॥ २२ ॥

अन्वयः—चन्द्रे स्वोच्चस्थे तु नवमांशक्रमेण ऊर्ध्वगं द्रव्यं (ज्ञेयम्)। परमोच्चे स्थिते, तथा ऋक्षसंक्रमे भित्तिस्थं द्रव्यं (ज्ञेयम्) ॥२२॥

अर्थः—चन्द्रमा अपनी उच्च राशि में हो तो नवमांश के क्रम से जहाँ द्रव्य गड़ा हो वह वहाँ से ऊपर है ऐसा समझना। यदि परम उच्च (वृष के ३ अंश में) चन्द्रमा हो वा नक्षत्र सन्धि में हो तो जमीन से भी ऊपर भित्ति (दिवाल) में द्रव्य समझना ॥२२॥

द्रव्यसंख्याज्ञान—

चन्द्रभुक्तांशमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते।
तस्या दशगुणा वृद्धिः षड्वर्गेन्दुबलक्रमात् ॥२३॥

अन्वयः—चन्द्रभुक्तांशमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते, षड्वर्गेन्दुबलात् तस्याः = संख्यायाः दशगुणा वृद्धिः (भवति) ॥२३॥

अर्थः—चन्द्रमा जितने अंश भोग कर चुके हों उतनी ही द्रव्य की संख्या समझना। तथा चन्द्रमा के षड्वर्ग बल के क्रम से संख्या की दश गुना वृद्धि होती है। अर्थात् गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये ६ षड्वर्ग कहलाते हैं। इनमें किसी एक में हो तो भुक्तांश के हिसाब से जो संख्या हो उसे १० गुना करना, दो वर्ग में हो तो १०० सौ गुना, ३ वर्ग में १००० से, ४ वर्ग में हो तो १०००० से, ५ वर्ग में हो तो १००००० से, ६ छवो वर्ग अपने ही हो तो १०००००० से संख्या को गुना कर द्रव्य का प्रमाण कहना ॥२३॥

द्रव्य के अधिष्ठायक देवता—

अधिष्ठितं भवेद् द्रव्यं यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः।
तदधिष्ठायको ज्ञेयो भास्करादिग्रहैः क्रमात् ॥२४॥

अन्वयः—यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः 'वर्तते' तत्र अधिष्ठितं द्रव्यं ज्ञेयम्। भास्करादिग्रहैः 'युते चन्द्रे' क्रमात् तदधिष्ठायको ज्ञेयः ॥२४॥

अर्थः—जिस स्थान (अहिचक्र के कोष्ठ) में चन्द्रमा किसी ग्रह से युक्त बैठा हो उस स्थान में अधिष्ठित द्रव्य समझना। और सूर्यादि ग्रह से चन्द्रमा युक्त हो तो क्रम से नीचे लिखे हुए देवता उस द्रव्य के अधिष्ठायक होते हैं ॥२४॥

यथा—

†ग्रहं ‡मुग्धग्रहं चैव क्षेत्रपालं च मातृकाः ।
दीपेशं भीषणं रुद्रं यक्षं नागं विदुः क्रमात् ॥२५॥

अन्वयः—(सूर्यादिग्रहैर्युते चन्द्रे) ग्रहं, मुग्धग्रहं, क्षेत्रपालं, मातृकाः, दीपेशं, भीषणं, रुद्रं, यक्षं, नागं, इति क्रमात् (द्रव्याधिष्ठायकं) विदुः ॥२५॥

अर्थ—चन्द्रमा सूर्य से युक्त हो तो ग्रह, दैनिक चन्द्रमा से युक्त हो तो मुग्धग्रह, मङ्गल से युत हो तो क्षेत्रपाल, बुध से युत हो तो मातृका, बृहस्पति से युत हो तो दीपेश, शुक्र से युत हो तो भीषण, शनि से युत हो तो रुद्र, राहु से युत हो तो यक्ष, केतु से युत हो तो नाग ये द्रव्य के अधिष्ठायक कहे गये हैं ॥२५॥

अधिष्ठायक देवता की पूजा का विधान—

ग्रहे होमः प्रकर्तव्यः मुग्धे नारायणी बलिः ।
क्षेत्रपाले सुरामांसं मातृकासु महाबलिः ॥ २६ ॥

अन्वयः—ग्रहे अधिष्ठायके सति होमः प्रकर्तव्यः, मुग्धे नारायणी बलिः, क्षेत्रपाले सुरामांसं (देयम्) मातृकासु महाबलिः ॥ २६ ॥

अर्थ—यदि द्रव्य के अधिष्ठायक ग्रह हों तो होम करना चाहिये, मुग्ध हो तो नारायणी बलि देना चाहिये, क्षेत्रपाल हो तो मदिरा और मांस देना चाहिये, मातृका हो तो महाबलि करना चाहिये ॥ २६ ॥

दीपेशे दीपजा पूजा भीषणे भीषणार्चनम् ।
रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो यक्षे यक्षादिशान्तयः ॥ २७ ॥

अन्वयः—दीपेशे दीपजा पूजा, भीषणे भीषणार्चनम्, रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो, यक्षे यक्षादिशान्तयः कार्याः ॥ २७ ॥

अर्थ—दीपेश द्रव्य के अधिष्ठाता हो तो दीपपूजा, भीषण हो तो भीषण की पूजा, रुद्र हो तो रुद्रजप (रुद्री पाठ आदि) यक्ष हो तो यक्ष की शान्ति करै ॥ २७ ॥

† ग्रह = नवग्रह । ‡ 'मुख्यग्रहं चैव' इति पाठान्तरम् । मुख्यग्रह = सर्प ।

नागे नागगणाः पूज्या गणनाथेन संयुताः ।
लक्ष्मीं धरादितत्त्वानि सर्वकार्येषु पूजयेत् ॥ २८ ॥

अन्वयः—नागे अधिष्ठायके सति गणनाथेन संयुक्ता नागगणाः पूज्याः । त
सर्वकार्येषु लक्ष्मीं धरादितत्त्वानि पूजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—नाग द्रव्याधिष्ठायक हों तो गणेश सहित नागगण की पू
करै, तथा सब कार्यों में श्रीलक्ष्मी तथा धरादिक पाँचों तत्त्व (पृथ्वी
जल, वायु, अग्नि, आकाश) की पूजा अवश्य करै ॥ २८ ॥

एवं कृत्वा विधानेन निधिः साध्योऽपि सिद्ध्यति ।
निधिं प्राप्ता नरा लोके वन्दनीया न संशयः ॥ २९ ॥

अन्वयः—विधानेन एवं कृत्वा साध्यः निधिः सिद्ध्यति । अपि = निश्चयेन
तथा निधिं प्राप्ताः नराः लोके वन्दनीयाः भवन्ति, अत्र संशयः न ॥ २९ ॥

अर्थः—विधि पूर्वक इस प्रकार द्रव्याधिष्ठायक की पूजा करके सा
निधि की अवश्य सिद्धि होती है । तथा निधि को जानने वाले लोक
वन्दनीय होते हैं ॥ २९ ॥

पद्मासने चन्द्रातपेन "ऐं क्लीं हूँ वद वद वाग्वादि
स्वाहा" इति मन्त्रं षण्मासपर्यन्तं त्रिसन्ध्यं जपेत् तद
निधिप्राप्तिर्भवति ।

इति ब्रह्मयामलीयस्वरोदये "अहिबलचक्रम्" समाप्तम् ।

उपरोक्त विधि से मन्त्र को ६ महीने तक जपने से द्रव्यप्रा
होती है ।

चौगमाग्रामवास्तव्य—श्रीसीतारामशर्मणा ।
अहिचक्रे कृता टीका समाप्तेयं सुबोधिनी ॥
इति ज्यौतिषाचार्य—पण्डित—श्रीसीतारामशर्मकृत-
सुबोधिनीटीका समाप्ता ॥ शुभम् ॥